



वैदिक वाङ्मय और सामाजिक संगठन

डॉ. कनक रानी

एसो. प्रोफेसर— संस्कृत विभाग, आर्य महिला डिग्री कालेज,
शाहजहांपुर (उ. प्र.)

प्रस्तावना—

वेद का संदेश है—‘संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्’ (ऋग्वेद/10/191/2)। मिलकर चलें, मिलकर बोलें, यह कामना समाज को संगठित करने में अत्यंत प्रभावी है। संगठन में अद्भुत शक्ति होती है। संगठित समाज संघर्षपूर्ण परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने में सक्षम होता है। यही कारण है कि वैदिक वाङ्मय में सामाजिक संगठन की महत्ता को प्रतिपादित किया गया तथा समाज किस प्रकार संगठित हो इस दिशा में मार्गदर्शन किया गया। ऋषि—मुनियों द्वारा प्रणीत यह उपदेश आज भी मानव समाज को लाभान्वित करने में सहायक बन सकता है।



निष्कर्ष—

जब समाज के लोग संगठित होते हैं तो समाज में सुख समृद्धि आती है। संगठन की इस महत्ता को लक्षित करते हुए ऋग्वेद का ‘संगठन सूक्त’ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। द्वेषमुक्त पारस्परिक व्यवहार का उपदेश देकर वेदों में मानवमात्र को संगठित रहने का संदेश दिया गया। अविरोधी संकल्प एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार से सामाजिक संगठन को सबल किया जाना संभव है। सहचित्ता, सहवदनीयता तथा सहगमनीयता से स्वस्थ व संगठित समाज की संकल्पना को आकार दिया जा सकता है।

उद्देश्य—

वर्तमान में समाज अनेकानेक विसंगतियों का सामना कर रहा है। इस संदर्भ में विघटनकारी द्वेष—घृणा आदि भावों को ध्वस्त करना ही प्रभावी समाधान है। सद्भाव के समावेश से मानव—मानव के मध्य सकारात्मकता आएगी तथा समाज संगठन शक्ति से संयुक्त होगा। ऋषि—मुनियों ने मानव को संगठित कर समाज को स्वस्थ एवं सुंदर बनाने का प्रयास किया। ऋग्वेद के अन्तर्गत संगठन सूक्त में उपदिष्ट मंत्र संप्रति समाज को संगठित करने में सहायक दिखाई देते हैं।

बीज शब्द— सामाजिक, संगठन, एकता, प्रेम, मैत्री, सद्भाव

संगठन ही समाज की सुव्यवस्था, सुस्थिरता और सुदृढ़ता का आधार है। सामाजिक संगठन की मूल अवधारणा वैदिक वाङ्मय में दिखाई पड़ती है। ऋषियों का दूरदर्शी ध्येय समाज को संगठित करके लोकाभ्युदय

का मार्ग प्रशस्त करना था। यही कारण था कि उन्होंने संगठन पर बल दिया। यदि मानव संगठित भाव से रहेंगे तो सामाजिक समृद्धि होगी। सामाजिक अभिवृद्धि के मूल में संगठन का भाव निहित है। वेद में संगठन सूक्त के अंतर्गत उल्लिखित मंत्र समाज को संगठित करने में प्रभावी हैं। यह अकाट्य तथ्य है कि वेदप्रतिपादित नीति मूल्य और मतैक्यता समाज को सुपुष्ट बनाने में अहं भूमिका निभाते हैं। जब सामाजिक प्रगति का लक्ष्य समान होता है, उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समाज की इकाईयां मिलजुल कर गतिशील होती हैं तभी लक्ष्याधिगम की सुगमता संभव होती है। अतः सुस्पष्ट है कि संगठन का समाज पर विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है।

संगठन एक सांस्कृतिक व सैद्धान्तिक व्यवस्था है, यहां मानव संगठित होकर सक्रिय रहते हुए सामाजिक व्यवस्था में सहायक बनते हैं। इससे सामाजिक जीवन का विनिर्माण होता है। यह आपन्नावस्था व संघर्षपूर्ण परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता उत्पन्न करता है। इससे सामाजिक संरचना में गुणवत्ता आती है तथा परिवेश में अनुकूलता विस्तारित होती है। निस्सन्देह, संगठन का सुपरिणाम समाज में स्थायित्व के रूप में दृष्टिगत किया जा सकता है।

समाज में संगठन एक सकारात्मक संस्थिति है। संगठन से न केवल व्यष्टिगत स्तर पर अपितु समष्टिगत स्तर पर भी उत्थान संभव है। यदि समाज अशक्त होता है तो अनेक प्रकार के समस्याओं से घिर जाता है, उसकी उन्नति बाधित होती है। ध्यातव्य है कि समाज में विघटन की दशा अहितकर है। विघटन से बचने के लिए लोगों को अनुशासित व संगठित करना अपरिहार्य है। स्मरणीय है कि निश्चित उद्देश्य वाले व्यक्तियों का समूह संगठन के रूप में व्यवहृत होता है। नियमों में आबद्ध होकर (नियमित होकर) ही संगठन अपेक्षित प्रगति को प्राप्त कर सकता है।

संगठन ही समाज की शक्ति है। संगठन में व्यक्ति का मानसिक व बौद्धिक समर्पण का भाव भी निहित होता है। जहां संगठन है, वहां प्रगतिशीलता है। जहां सामाजिक संगठन है, वहां शांति की प्रतिष्ठापना होती है। जहां सामाजिक संगठन है, वहां सकारात्मकता दिखाई पड़ती है। जहां सामाजिक संगठन है, वहीं अनुकूलता होती है। संगठन विहीन समाज दुर्बल होता है, इस स्थिति में सामाजिक विघटन की संभावना बनी रहती है। अतएव यह निर्विवाद तथ्य है कि समाज में संगठन का विशेष महत्व है।

वेदों में संगठन की अवधारणा समाज के प्रगतिवादी लक्ष्य के प्रति अभिमुखी है। संगठन में एकता का अतिशय महत्वपूर्ण स्थान है। वैचारिक दशा के साथ-साथ कार्यात्मक दशा में भी एकत्व आवश्यक है। एकाकी व्यक्ति के प्रयत्नशील होने पर समाज अपेक्षाकृत प्रगति के सन्दर्भ में उतना गतिशील नहीं हो सकता जितना सामूहिक रूप से प्रयत्नशील होने पर।

अस्तु, यहां प्रश्न यह उठता है कि समाज को किस प्रकार संगठित किया जाए? संगठन का समाज पर क्या प्रभाव परिलक्षित होता है? यदि संगठन अशक्त होता है तो सामाजिक स्वरूप पर क्या दुष्प्रभाव दृष्टिगत होता है? संगठन के सशक्तीकरण के लिए किन आदर्शों और सिद्धांतों को अपनाया जाए?

वैदिक संहिताओं में पदे पदे ऐसे मंत्र मिलते हैं जिनमें उल्लिखित शिक्षाओं को आत्मसात कर समाज को सुसंगठित किया जा सकता है। सामाजिक एकजुटता के लिए सहगमनीयता, सहवदनीयता आवश्यक तत्व हैं। ऋषि- मुनि मानव समाज को सहचित्ता के संदर्भ में प्रेरणा देते हैं-

संगच्छध्वं सहवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।¹

जब विचारों में पृथक्कता होती है तो संगठित होने का भाव क्षीण हो जाता है और संगठन में व्यवधान उत्पन्न होता है। यहां मिलजुल कर रहने पर बल दिया गया। संस्कृत साहित्य में मिलजुल कर रहने का महत्व यत्र- तत्र वर्णित है। मिलकर चलो, मिलकर बोलो, एक दिशा की ओर गतिशील हो। सभी एकस्वर हों। निश्चय ही इन तत्वों की प्रतिष्ठापना लोक विवृद्धि में साधक है। कहने का तात्पर्य है कि आपसी सद्भाव को उत्पन्न किया जाए और भेदभाव को परास्त किया जाए। यहां सांस्कृतिक सर्वजनसुखाय और सर्वजनहिताय का भाव संजोया हुआ है। निश्चय ही समान सोच और समान बोल मानव को संगठित करते हैं-

समानो मंत्रः समितिः समानी
 समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
 समानं मंत्रमभिमंत्रये वः
 समानेन वो हविषा जुहोमि।²

विचारों में यदि सकारात्मकता होगी तो इसका स्पष्ट प्रभाव सामाजिक उन्नति के रूप में दृष्टिगत किया जा सकता है। सकारात्मक विचारों— भावों— कार्यों का प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता ही है। समाज भी उससे अछूता नहीं रह पाता और उसमें अनुकूलता का समावेश होता है। वैदिक मंत्र इस दिशा में पर्याप्त मार्गदर्शन करते हैं कि किस प्रकार समाज के अंतर्गत अनुकूलता विस्तारित की जाए? ऋग्वेद में कहा गया है कि इस उद्देश्य को लक्ष्यगत करते हुए मानव के मन, हृदय और संकल्प अविरोधी हों—

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
 समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।³

यहां 'समान' शब्द बड़ा ही साभिप्राय है। इसका अर्थ है— विरोध का अभाव। जब विरोध दूर हो जाता है तो अवरोध भी दूर हो जाता है। मानसिक और वैचारिक अवरोध के दूर होने से समाज में शक्ति का समावेश होता है। यहां प्रेरित किया गया कि मनुष्य अविरोधी बनकर सामाजिक प्रगति के संदर्भ में चिंतनशील एवं प्रयासशील हों। सामाजिक उन्नति का तो मुख्य आधार ही है— समान मंत्रणा। यही लोकमंगल की मूल अवधारणा है जो वेदों में निहित है। मतभेद भुलाकर समाज की प्रगतिशीलता को अपना लक्ष्य बनाएं। यह व्यक्ति के लिए ही नहीं संपूर्ण समाज के लिए अभ्युदयकारी है।

राष्ट्रीय एकीकरण के लिए विचारों में सकारात्मकता एवं व्यापकता का समावेश जरूरी है। हमारी संस्कृति का तो मूल आदर्श ही है— वसुधैव कुटुंबकम् तथा कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। इस उच्चादर्श की प्राप्ति हेतु अनुदारता से पृथक्करण की दिशा में प्रयत्नशील होना वांछित है। वैचारिक परिष्करण इस दिशा में प्रभावी उपाय है।

संगठन के लिए एकता एक अपरिहार्य तथ्य है जिसको उपेक्षित कर समाज कदाचित् ही संगठित स्वरूप को प्राप्त हो सकता है—

ऐक्यं बलं समाजस्य तदभावे स दुर्बलः।
 तस्मात् ऐक्यं प्रशंसन्ति दृढं राष्ट्रहितैषिणः।।

एकता सामाजिक सशक्तता में सहायक तत्व है। एकता के विखंडन से सचेत रहो, एकता में आबद्ध समाज ही सर्वजनसुखाय लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकता है। यहां वैमनस्य नहीं, सौमनस्य की प्रधानता है। विचार वैषम्य नहीं, विचार साम्य की प्रमुखता है। यहां चित्त में विरोध नहीं, संकल्पों में अवरोध नहीं, अपितु समानता का अवबोध है। यहां एकता है, गतिशीलता है, प्रगतिशीलता है।

मतैक्यता प्रभावी आधारशिला है सामाजिक सुदृढ़ता के लिए। मानवों के मध्य मतभेदों से सामाजिक अस्थिरता की संभावना रहती है। वैदिक मंत्र मनो में सद्भावों के समावेश के लिए प्रेरित करते हैं। मानव जीवन सुखमय बन सके इसलिए विचारों की गतिशीलता एक दिशा में हो, प्रगति की दिशा में हो।

परस्पर प्रेम एक ऐसा तत्व है जो मनोवैज्ञानिक स्तर पर समाज को संगठित करता है। सद्भाव, सहयोग, सहानुभूति आदि उदात्त भाव सामाजिकों के मध्य सौहार्द को उत्पन्न करते हैं। जब व्यक्ति के आचार एवं व्यवहार नीति मूल्यों से सुप्रभावित होंगे तभी समाज में सकारात्मक प्रभाव परिलक्षित होगा और सामाजिक उत्थान की गति तीव्रतर होगी। मानव मात्र के मध्य निःस्वार्थ प्रेम सामाजिक विकास का कारक है।

वैदिक मंत्र में सहृदयता, सांमनस्य, अविद्वेष आदि सद्भावों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार का संदेश दिया गया कि—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्योअन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाध्न्या ॥4

आपस में प्रेम परिवेश को सकारात्मक स्वरूप प्रदान करता है। वैचारिक परिष्करण इस दिशा में प्रभावी उपाय है। विचारों में यदि सकारात्मकता होगी तो इसका स्पष्ट प्रभाव सामाजिक उन्नति के रूप में दृष्टिगत किया जा सकता है।

संगठन के लिए संकीर्णता से निकलकर परस्पर मैत्री संस्थापित करना ही समीचीन है। यजुर्वेद में कहा गया कि सभी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। मैं सबको मित्र की दृष्टि से देखूँ। हम लोग परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें—

दृते दृह मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥5

मन को शिवसंकल्पों से संयुक्त कर द्वेषादि मनोविकृतियों को परास्त करने का प्रयास किया गया। जैसे विचार होते हैं, वैसे ही कर्म होते हैं, तदनुसार ही फल मिलते हैं और उनसे प्रभावित समस्त परिवेश होता है। यजुर्वेद में मनसत्त्व को ही सत्संकल्पों से युक्त करने के लिए प्रार्थना की गयी—

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥6

मन में स्थित सकारात्मक विचारों, संकल्पों के सुप्रभाव को साहित्यकारों ने यत्र तत्र वर्णित किया है। इसमें कोई संशय नहीं कि सुविचारों से सामाजिकों के मध्य आत्मीयता बढ़ती है।

सांप्रदायिकता क्षेत्रीयता, जातीयता आदि अनेक पहलू हैं जो राष्ट्र की एकता को बाधित करते हैं। इनकी संकुचितता से मुक्त होने की अपेक्षा है, इनके दुष्प्रभावों से पृथक्त्व की आवश्यकता है। राष्ट्रवासियों का नैतिक समुन्नयन भी संगठन में साधक है। अहं भावना अथवा स्वार्थ भावना का परित्याग संगठन के लिए हितकारी है। देश की समस्याओं का समाधान स्वार्थ का परित्याग कर ही निकाला जा सकता है।

मंत्रदृष्टा ऋषियों ने काल और सीमाओं से परे संगठन भावना को प्राथमिकता दी और मानव को संदेश दिया कि संकीर्णता से ऊपर उठो, स्वार्थ भाव को तिलांजलि दो, लोकहित को प्राथम्य दो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची—

- 1— (ऋग्वेद / 10 / 191 / 2)
- 2— (ऋग्वेद / 10 / 191 / 3)
- 3— (ऋग्वेद / 10 / 191 / 4)
- 4— (ऋग्वेद / 3 / 30 / 1)
- 5— (यजुर्वेद / 36 / 18)
- 6— (यजुर्वेद / 34)